

जे० कृष्णमूर्ति जी का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान

रंजना मिश्रा

शोध छात्रा

शिक्षाशास्त्र विभाग

नेहरु ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज

जे. कृष्णमूर्ति अपने वार्ताओं तथा विचार विमर्शों के माध्यम से अपनी शिक्षाओं को बच्चों तक पहुंचाते हैं। क्योंकि मानव-मन के मूलभूत परिवर्तनों से तथा एक नवीन संस्कृति के सर्जन में जो केंद्रीभूत है, उसके सम्प्रेषण के लिए शिक्षा को कृष्णमूर्ति प्राथमिक महत्व का मानते हैं। ऐसा मौलिक परिवर्तन तभी संभव होता है, जब बच्चों की विभिन्न प्रकार की कार्यकुशलता तथा विषयों का प्रशिक्षण देने के साथ-साथ उसे स्वयं अपनी विचारणा तथा क्रियाशीलता के प्रति जागरूक होने की क्षमता भी प्रदान की जाती है। यह जागरूकता बच्चों के अंदर मनुष्य के साथ, प्रकृति के साथ तथा मानव-निर्मित यंत्रों के साथ सही संबंध को परिपक्व करने के लिए अत्यंत आवश्यक है। कृष्णमूर्ति आंतरिक अनुशासन पर बल देते हैं। बाह्य अनुशासन मन को मूर्ख बना देता है, यह आप में अनुकूलता और नकल करने की प्रवृत्ति लाता है। परंतु यदि आप अवलोकन के द्वारा सुन करके, दूसरों की सुविधाओं का ध्यान करके, विचार के द्वारा अपने को अनुशासित करते हैं, तो इससे व्यवस्था आती है। जहां व्यवस्था होती है, वहां स्वतंत्रता सदैव रहती है। यदि आप ऐसा करने में स्वतंत्र नहीं है तो आप व्यवस्था नहीं कर सकते। व्यवस्था ही अनुशासन है। जे. कृष्णमूर्ति अपने शैक्षिक विचारों के माध्यम से शिक्षक और शिक्षार्थी को यह उत्तरदायित्व सौंपते हैं कि वे एक अच्छे समाज का निर्माण करें, जिसमें सभी मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक जी सकें, शांति और सुरक्षा में हिंसा के बिना। क्योंकि आज के विद्यार्थी ही कल के भविष्य हैं।

शिक्षा का अर्थ—

जे. कृष्णमूर्ति जी का मानना है कि शिक्षा-दर्शन एक ऐसा विषय है जो दर्शन के दृष्टिकोण से शिक्षा के समस्त कार्यों, क्रियाओं, समस्याओं आदि का अध्ययन करता है तथा समस्याओं का समसामाजिक समाधान प्रस्तुत करते हुए शिक्षा की प्रक्रिया को उचित दिशा में मोड़ देता है।

जे. कृष्णमूर्ति जी सही शिक्षा की वकालत करते हुए कहते हैं अज्ञानी वह व्यक्ति नहीं है जो विद्वान नहीं है अज्ञानी वह है जो स्वयं अपने को नहीं जानता और ऐसा विद्वान व्यक्ति मूढ़ जो जो समझ अथवा बोध के किताबों पर जानकारियों पर और प्रामाण्य पर निर्भर रहता है।

बोध केवल आत्मज्ञान से आता है और अपनी समस्त मानसिक प्रक्रिया के प्रति सजगता से। इस प्रकार शिक्षा का वास्तविक अर्थ स्वयं अपने को समझना है, क्योंकि हममें से प्रत्येक में सम्पूर्ण अस्तित्व समाहित है। जे. कृष्णमूर्ति जी कहते हैं जिसे हम शिक्षा कहते हैं वह केवल पुस्तकों से जानकारियों एवं ज्ञान को संकलित करना है और यह कोई भी साक्षर व्यक्ति कर सकता है। ऐसी शिक्षा स्वयं को अपने से पलायन का एक बहुत सूक्ष्म तरीका देती है और सभी पलायनों की भाँति वह भी अनिवार्यतः और विचारों के साथ हमारे अपने दोषपूर्ण सम्बंधों का परिणाम है छंद और भाँति। जब तक हम उस सम्बन्ध को नहीं समझते तथा उसे नहीं बदलते तब तक मान विहता अर्थात् तथ्यों का संकलन एवं विभिन्न प्रकार की कार्यकुशलता की उपलब्धि हमें लगातार बढ़ने वाले विनाश और अराजगता की ओर ही ले जायेगी।

सही शिक्षा का अर्थ है कि वह किसी तकनीक के ज्ञान को प्रोत्साहन करने के साथ-साथ कुछ ऐसा काम करें जो कहीं अधिक महत्वपूर्ण है, यानि वह जीवन की अंखड़ प्रक्रिया का अनुभव करने में भी मनुष्य की सहायता करे। यही वह अनुभव है जो क्षमता एवं तकनीक को उचित स्थान देगा। यदि किसी व्यक्ति के पास वास्तव में अभिव्यक्ति करने लायक कुछ है तो उसकी अभिव्यक्ति ही अपनी शैली का सृजन कर लेगी, लेकिन आन्तरिक अनुभव के अभाव में बस किसी शैली को सीखना हमें केवल एक छिछलेपन की ओर ले जायेगी।

शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण कार्य ऐसे समन्वित व्यक्तियों को पैदा करना है जो जीवन का उसकी समग्रता में समान करे। एक विशेष की तरह ही आदर्शवादी व्यक्ति को भी समग्रता से कोई मतलब नहीं होता, उसका सरोकार केवल अंश से ही होता है। जब तक व्यक्ति कर्म के किसी आदर्श प्रारूप के पीछे चल रहा है तब तक उसके लिए समन्वित होना संभव नहीं है, और अधिकांश आदर्शवादी अध्यापक प्रेम को उठाकर एक ओर रख देते हैं उसका मन नीरस तथा हृदय कठोर होता है। यदि हमें किसी बच्चे का अध्ययन करना हो तो यह आवश्यक है कि दम सजग सावधान और आत्मा सचेत हो और इसके लिए अपार प्रज्ञा और प्रेम की आवश्यकता है, न कि उसे किसी आदर्श का अनुसरण करने के लिए प्रोत्साहित करने की वर्तमान शैक्षिक तथा सामाजिक संरचना, मुक्ति तथा समन्वय लाने में व्यक्ति की सहायता नहीं करती, और यदि वास्तव में अभिभावक चाहते हैं कि बच्चे का संपूर्ण समन्वित क्षमता का विकास हो, तो उन्हें अपने घर के वातावरण एवं प्रभाव को

बदलना शुरू कर देना चाहिए तथा सही शिक्षकों के साथ लेकर विद्यालयों का निर्माण करना चाहिए।

कृष्णमूर्ति ने शिक्षा का अर्थ निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट किया है—

1. शिक्षा का अर्थ आत्मबोध ग्रहण करना अर्थात् स्वयं को समझना है।
2. शिक्षा का अर्थ अधिगम की कला से है।

3. शिक्षा का अर्थ धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझना है।
4. शिक्षा का अर्थ जीवन के अर्थ को उसकी समग्रता में समझना है।
5. शिक्षा का अर्थ कार्यक्षमता का विस्तार करना है।
6. शिक्षा का अर्थ सम्यक् बुद्धि को जाग्रत करना है।
7. शिक्षा का अर्थ मेधा का शुभारम्भ करना है।
8. शिक्षा का अर्थ सत्य की खोज करना है।
9. शिक्षा का अर्थ कार्य को सम्पूर्ण मन, हृदय और प्रेम से करना है।
10. शिक्षा का अर्थ मन को परम्पराओं के बोझ से मुक्त करना है।

शिक्षा का उद्देश्य—

जे. कृष्णमूर्ति ने शिक्षा को जीवन के बेहतर तरीके के रूप में देखा है और कहा है कि शिक्षा शुद्ध चेतना के विस्तार से सम्भव है। उन्होंने संकेत किया कि "शुद्ध चेतना विचारातीत है व भाषा से भी परे है, अशाब्दिक है। शब्द यथार्थ नहीं होते। चेतना विचार द्वारा अनिर्धारित है, इसी चेतना का विस्तार होना चाहिये। यह तब सम्भव है जब हम लघुता समाप्त कर स्वयं का विस्तार करें।" आत्म विस्तार के लिए बाहर से बच्चों को देने का प्रयास न करें। आज के अभिभावक सांसारिक भौतिकवाद और भाग-दौड़ की दुनियाँ में रहते हुये अपने बालकों के कोमल मन पर पुस्तकीय ज्ञान का एक बहुत बड़ा बोझ लाद देते हैं, और बालक न तो पूर्ण मानव बन पाता है और न ही योग्य नागरिक।

शिक्षा का उद्देश्य निश्चित ही रोजगार सृजन है पर शिक्षा हमें बेहतर मनुष्य भी बनाए जिसमें मानवीय गुण हों तथा विश्व को बेहतर ढंग से रहने वाली जगह बनाए। यदि हृदय सच्चा है तो चरित्र होगा। चरित्र के साथ घर में शान्ति होगी और जहां घर अच्छे हैं, उससे राष्ट्र और विश्व प्रभावित होगा।

जे. कृष्णमूर्ति के शब्दों में 'जानकारी इकट्ठा करना और तथ्यों को बटोरकर आपस में मिलाना ही शिक्षा नहीं है, शिक्षा तो जीवन के अभिप्राय को उसकी समग्रता में देखना-समझना है। पूर्णतः समन्वित प्रज्ञाशील मनुष्य तैयार करना है। परीक्षा और उपाधि प्रज्ञा का मानदंड नहीं है।

पाठ्यक्रम—

जे० कृष्णमूर्ति कहते हैं कि बालकों को प्रभावशाली तरीके से व्यक्तिगत, सामाजिक और विशेष प्रकार से राष्ट्रीय जीवन से जोड़े रखने में उक्त पाठ्यक्रम की आवश्यकता होती है। कृष्णमूर्ति ने निम्न बिन्दुओं पर जोर दिया है—

1. नैतिक गुणों का विकास
2. उद्देश्यपूर्ण पाठ्यक्रम

3. क्रियाशीलता
4. संतुलित पाठ्यक्रम
5. अधिगम और उपयोगिता

शिक्षक—

शिक्षा देने का कार्य मुख्य रूप से शिक्षक का है। शिक्षक एक निश्चित पाठ्यक्रम और निश्चित शिक्षण विधि के अनुसार एक सिस्टम में बंधकर अपना कार्य करता है। उसे केवल उतना करना है जितना उसके लिए निर्धारित है। वह उसका, गोताखोर अथवा तैराक के रूप में अपना कार्य करता है जबकि आज की परिस्थिति में उसे स्वयं को रूई धुनने वाला धुनिया और कुम्हार के रूप में प्रस्तुत करना होगा। दर असल मूल्य शिक्षा केवल किताबों का विषय हो ही नहीं सकती, उसे तो व्यवहार में दिखना चाहिए।

जे. कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि एक सही शिक्षक बनने के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक पुस्तकों और प्रयोगशालाओं से अपने को निरंतर मुक्त करना रहे, उसे सदा इसकी सावधानी बरतनी चाहिए कि विद्यार्थी कही से उदाहरण, आदर्श, प्रमाण न बना लें। जब अध्यापक अपने विद्यार्थी के माध्यम से अपने को परिपुष्ट करने की अभिलाषा रखता है, जब विद्यार्थी की सफलता उसकी अपनी सफलता होती है तब उसका शिक्षण आत्म सातत्य का, अपने अंह को ही बनाये रखने का एक बहाना होता है और उस आत्म बोध तथा स्वतंत्रता के लिए हानिकारक है सही अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि वह इन बाधाओं के प्रति जागरूक हो जिससे कि वह अपने विद्यार्थियों को केवल अपने ही प्रभुत्व से नहीं बल्कि उनके अपने आत्म केन्द्रित प्रयासों से भी मुक्त कर सकें।

शिक्षण विधि—

जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार शिक्षण विधि में पढ़ाने के तरीकों, और मानसिक और शारीरिक शिक्षा के लिये भी विवेक की आवश्यकता होती है। शरीर का ध्यान और इसका विकास सबसे महत्वपूर्ण होता है क्योंकि स्वस्थ शरीर के बिना सब शिक्षा व्यर्थ होती है।

समय का मूल्य सिखाने के दो उपाय हो सकते हैं। पहला आप छात्र को यह वाक्य याद करने को दे दें और दस पांच बार लिखवा लें और दूसरा उपाय है आप स्वयं दैनिक जीवन में इस आचरण का पालन करें।

केवल नोट्स और माडल पेपरों से काम न चलायें, मूल ग्रंथों का अध्ययन करें। इंटरैक्टिव मेथोडोलाजी को अपनाएं। हम मूल्यों को संप्रेषित करने के लिए पहले स्वयं तो संवेदित हों। बदलते परिवेश में मूल्यों की निश्चित दिशा तो तय करें। अब परिवेश में भौतिक संसाधन ही तो बदले हैं, उनके साथ हम मूल्यों को कैसे नकार सकते हैं? वैसे भी शाश्वत मूल्य तो कभी नहीं बदला करते, हां, उस तक पहुंचने के साधन और कर्मकांड जरूर बदल जाते हैं।

अनुशासन—

जे. कृष्ण मूर्ति जी अनुशासन के बारे में कहते हैं कि यदि आप नहीं सी उम्र से ही सही रूप में शिक्षित किए जाए तब आपमें एक ऐसी अवस्था का आगमन होगा जिसमें न हो वाह्य विसंगति और न तो आंतरिक। तब अनुशासन या जबरदस्ती की आवश्यकता ही नहीं रह जायेगी। क्योंकि तब आप कोई कवि अपूर्णता, स्वतंत्रता और समग्रता से कर रहे होंगे। अनुशासन का आगमन तो तभी होता है जब हममें विसंगतियाँ हों नेता, सरकार, संगठित धर्म यह चाहते हैं कि आप एक ही प्रकार के विचार करे क्योंकि आप पक्के साम्यवादी, पक्के कैथोलिक या और कुछ पक्के बन सके, तब आप समस्या के रूप में नहीं रह जायेगे, तब आप केवल श्र(ा करेंगे और यंत्रवत् कार्य करेंगे। तब विसंगति का प्रश्न ही नहीं उठेगा क्योंकि आप किसी का अनुसरण कर रहे, लेकिन सभी प्रकार का अनुकरण विनाशकारी है, क्योंकि यह यांत्रिक है। यह केवल अंधानुकरण है जिसमें सृजनात्मक मुक्ति नहीं है। अतः समग्रता के लिए किसी प्रकार के अनुशासन की आवश्यकता नहीं।

जे. कृष्णमूर्ति जी अनुशासन की जगह व्यवस्था शब्द का प्रयोग करते हैं वे कहते हैं कि मैं अनुशासन शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहता, क्योंकि आप अनुशासन का अर्थ सिर्फ बाहरी बदाव तक सिमट कर रह गया है जबक व्यवस्था तब तक नहीं हो सकती जब तक भीतरी समूची प्रक्रिया लक्ष्य प्राप्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ न बनाएँ।

यदि हम चरित्र और व्यक्तित्व को स्थान ही नहीं देते, तो प्रत्येक स्तर पर हमें इतने चरित्रों के अध्ययन की क्या आवश्यकता थी? किसी भी परिस्थिति में हमारा दृष्टिकोण और निर्णय बहुत मायने रखते हैं। शिक्षा जीवन को दिशा देने के लिए होती है, उसे भटकाव में छोड़ने के लिए नहीं।

विद्यालय—

जे. कृष्णमूर्ति जी शिक्षा के विकास में शिक्षालय का योगदान एवं स्वरूप पर चर्चा करते हुए कहते हैं कि यही शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्ति की स्वतंत्रता से है। यह स्वतंत्रता ही समिष्ट के साथ, अनेक व्यक्तियों के साथ, सच्चे सहयोग को जन्म देती है। परन्तु यह स्वतंत्रता आत्म-विस्तार तथा अपनी सफलता के लिए किए गए प्रयत्नों का परिणाम नहीं है। स्वतंत्रता आत्मबोध के जरिए आती है, वह तब आती है जब मन उन बाधाओं से ऊपर एवं परे उठ जाता है। जिनको उसने अपनी सुरक्षा की लालसा से अपने लिए निर्मित किया है।

शिक्षालय को छोटा रखना चाहिए। किसी भी कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या सीमित होना जरूरी है ताकि शिक्षक प्रत्येक शिक्षार्थी पर पूरा ध्यान दे सके। संख्या अधिक होने पर उसके लिए यह करना संभव नहीं होगा और उस हाल में अनुशासन बनाए रखने के लिए दंड और पुरस्कार का रास्ता अपनाने की नौबत आ जाएगी।

पूरे विद्यालय हर समय व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा प्रज्ञा के भाव से परिपूर्ण रहना चाहिए। इसे न केवल संयोग पर छोड़ देने से काम नहीं चलेगा और न खाली समय में स्वतंत्रता तथा प्रज्ञा जैसे शब्दों का लापरवाही से उल्लेख करने का ही कोई अर्थ होगा।

वर्तमान में विद्यालयों के अपने प्रबन्धों के कारण स्थायी नैतिक शिक्षा विस्तृत रूप में व्यर्थ हो गयी है।

कृष्णमूर्ति के अनुसार विद्यालय का दिन धार्मिक सेवा के स्वभाव से शुरू होना चाहिये, सामान्य उद्देश्य और सामान्य जीवन के बारे में बताते हुए, ताकि सभी छात्र जो अलग अलग घरों से और अलग अलग जीवन शैलियों से आते हैं विद्यालय में एकता के सूत्र में बांध सकें।

ये एक अच्छी योजना होगी यदि विद्यालय के दिन का प्रारंभ थोड़े संगीत और गायन से शुरू हो ताकि सभी छात्र जो जल्दी जल्दी घर से खाना खाकर विद्यालय को भागते हैं थोड़ा शांत हो जायें और विद्यालय का दिन एक व्यवस्थित ढंग से शुरू कर सकें।

इसके बाद एक प्रार्थना होनी चाहिये और एक छोटा पर सुन्दर व्यक्तव्य जो छात्रों के सामने आदर्श प्रस्तुत कर सके।

पर यदि इन आदर्शों को उपयोगी बनाना है तो ये आदर्श दिनभर विद्यालय में अभ्यास करने चाहिये ताकि धर्म की आत्मा सभी अध्यायों और खेलों में समावेशित रहे।

धार्मिक शिक्षा-

किसी भी प्रकार के द्वन्द्व में फँसा हुआ मन कभी धार्मिक नहीं हो सकता है, धार्मिक जीवन की शुरुआत तो तभी होती है जब मानस मन बहुत ही गहराई में छिपे मन की द्वन्द्वात्मक स्थिति को समझकर उसके पार चला जाता है। आज हमारा जीवन अत्याधिक खाली-खाली जैसा है। आपके पास भले ही आप अत्यंत चतुर हो, परन्तु जहाँ तक आप अपने हृदय को इस मन की वस्तुओं से भरते रहेगे वहाँ तक यह निश्चय है कि आपका जीवन रोता ही रहेगा, कुरूप की रहेगा इसका अर्थ ही नहीं रहेगा। जीवन में सौन्दर्य और अर्थ तो तभी आ सकता है जब हमारा हृदय मन की समस्त वस्तुओं से परे हो गया हो।

जे.कृष्णमूर्ति जी धर्म, अहिंसा एवं मानवता पर विशेष जोर दिये है तथा शिक्षा में इसकी भूमिका को महत्व मानते है क्योंकि इसी के द्वारा व्यक्ति एक समग्र मानव के रूप में अपनी पहचान कायम रख सकता है। धर्म का अभिप्राय व्यक्ति जो धारण करता है वही उसका धर्म है इस दृष्टि से यह मनुष्य की मूल सत्ता से सम्बन्धित हो जाता है और मानवता, मनुष्यता जैसे प्रत्ययों का बोध कराता है। भारतीय दर्शन में धर्म की जो व्याख्या की गयी है यह संसार के सभी देशों में सभी युगों के लिए अपने वैधता बनाई हुई है धर्म के लक्षणों की व्याख्या करते हुए धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, पवित्रता, इन्द्रिय, निग्रह, ज्ञान विवेक, सत्य, अक्रोधद्ध कहा जा सकता है इससे व्यक्ति में मनुष्यता पनपती है जिसका आज पूरे विश्व में आवश्यकता है।

निष्कर्ष

जे. कृष्णमूर्ति का दर्शन और शैक्षिक विचार पूर्णतया भारतीय संस्कृति और परम्परा के प्रतिनिधि हैं, फिर भी वे विचारवाद की दृष्टि से जहाँ आदर्शवाद के निकट है वहीं शुद्ध चैतन्य आत्मतत्व की बात कर हमारे उपनिषदों तथा वेदान्त से प्रभावित हैं। मुक्त एवं स्वाभाविक शिक्षा की आवश्यकता तथा औचित्य बताते समय जहाँ वे प्रकृतिवाद के करीब हैं वहीं विज्ञान और जीविकोपार्जन को अनिवार्य मानते हुये यथार्थवाद के निकट हैं। सामाजिक गुणों एवं बालक में राष्ट्रीय मूल्यों की आवश्यकता बताते हुये जहाँ वे प्रयोजनवादी दृष्टिकोण रखते हैं वहीं वैश्विक कल्याण एवं एकात्म तत्व का समर्थन करते समय मानवतावाद के निकट जाते हुये प्रतीत होते हैं। इस महान शिक्षाविद् एवं दार्शनिक की मान्यतायें स्वतन्त्र न होते हुये भी सर्वव्यापी एवं समन्वयवादी भावना का परिपोषण करती हैं तथा आधुनिक भारतीय शिक्षा के लिए एक ऐसी दृष्टि का प्रतिपादन करती हैं जहाँ स्वार्थ, कुंठा, ईर्ष्या, द्वेष से मुक्त होकर बालक पूर्ण भारतीय परिवेश में भारतीय संस्कृति की मान्यता और परम्परा के अनुसार शिक्षा ग्रहण कर सकता है साथ ही उसे अपने व्यक्तित्व के निर्माण में स्वानुभव, प्रेरणा और वैचारिक चिंतन को पूर्ण अवसर मिल सकेगा। परम्पराओं से हटकर भी वह मूल्यों को आत्मसात् करने से अलग नहीं रह सकता।

कृष्णमूर्ति का शिक्षा-दर्शन ही वर्तमान संदर्भ में सबसे अधिक प्रासंगिक है। अपनी शैक्षिक विचारधारा द्वारा की कृष्णमूर्ति की एक ऐसी अमूल क्रान्ति लाना चाहते हैं, जिससे मानव का जीवन उदान्त बन सके। उसमें प्रेम, करुणा एवं संवेदनशीलता के गुणों का स्वाभाविक रूप से विकास हो।

अतः शिक्षा का यह मूलभूत कार्य है कि वह आपको यह खोजने में मदद करे कि आप सचमुच कौन सा कार्य प्रेम से करना चाहते हैं ताकि आप उसमें अपना सम्पूर्ण मन, सम्पूर्ण हृदय लगा सकें तभी आपमें उस मानवीय गरिमा का उदय होगा, तभी उदासीनता छिछली वृत्तियों का अन्त होगा। क्योंकि बालक किसी ज्ञान को अपने ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही ग्रहण करता है अतः बालक की ज्ञानेन्द्रियों के समुचित विकास पर ध्यान देना समीचीन होगा। बालक में अवलोकन की क्षमता का विकास होना चाहिए क्योंकि सर्वप्रथम वह अवलोकन के द्वारा स्थूल वस्तुओं को जानने का प्रयास करता है पुनः उसकी सूक्ष्मता में जाता है। अतः समग्र अवलोकन हेतु बालक को तैयार करने की आवश्यकता होती है। कृष्णमूर्ति जी का कहना है कि जैसे-जैसे आय बड़े होते हैं, दुर्भाग्य से सुनने का, देखने का, अवबोध समाप्त हो जाता है क्योंकि आपकी चिताएं होती हैं आप और अधिक धन, बढ़िया कार, अधिक या कम सन्तान चाहते हैं। आप ईश्यालू महत्वाकांक्षी अभिमानी, लालची एवं द्वेषपूर्ण हो जाते हैं इस प्रकार आप पृथ्वी के सौन्दर्य का बाधें खो देते हैं। परन्तु यदि आप विचार करना, निरीक्षण करना, सीखना आरम्भ करें-सीखना

पुस्तकों से नहीं बल्कि विश्व में जो चारों तरफ हो रहा है उसे देखकर—तो आप एक ऐसे भिन्न प्रकार के मनुष्य के रूप में विकसित हो सकें जो सतर्क है, जिनमें स्नेह है, जो लोगों से प्रेम करते हैं। यदि आप इस प्रकार से रहे तो संभवतः आपको सच्चा धार्मिक जीवन प्राप्त हो सकता है। जे.कृष्णमूर्ति जी कहते हैं कि सीखने के लिए स्वतंत्रता और व्यवस्था दोनों की आवश्यकता होती है। व्यवस्था के बिना स्वतंत्रता का कोई अस्तित्व नहीं होता। वे दोनों साथ-साथ चलती हैं। स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं है कि आपको मनमानी करने की छूट मिल गई है। स्वतंत्रता के लिए बालक की सम्यक बुद्धि की संवेदनशीलता की तथा अवबोध की आवश्यकता होती है। अतः आज वर्तमान समय में संवेदनशीलता तथा अवबोध की महती आवश्यकता है इस प्रकार की तैयारी इस प्रकार होनी चाहिए कि बालक में तत्परता, संवेदनशीलता, अवबोध, अवलोकन एवं प्रत्यक्षीकरण की क्षमता विद्यमान है। अध्यापकों के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जे. कृष्णमूर्ति का कहना है कि शिक्षा में शिक्षक के अनुकरण तथा सम्पर्क द्वारा बालक के व्यक्तित्व की कल्पना की गई है। प्रातः काल की प्रार्थना से लेकर रात्रि विश्राम तक बालक के समस्त क्रिया कलाप शिक्षकों के साथ ही होते हैं। जिनके सफल संचालन एवं नियंत्रण अध्यापक द्वारा सम्पादित किया जाता है। अतः अध्यापक का व्यक्तित्व विकसित होना अपेक्षित है। परिवार के पश्चात् शिक्षक ही बालक—बालिका और मस्तिष्क को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। अतः शिक्षक का स्वस्थ शरीर, उच्च नैतिक चरित्र, विकसित मन और मस्तिष्क तथा श्रेष्ठ सामाजिक गुण हैं। शिक्षक का शब्दोच्चारण में जे. कृष्णमूर्ति जी कहते हैं कि अगर शिक्षक का नैतिक चरित्र और आचरण आकर्षक नहीं होता तो उसका व्यक्तित्व विश्रुंयखलित होगा और उस अवस्था में पाठ्य विषय और उसके अध्ययन का कोई प्रभाव बच्चे, बालकों तथा किशोरों के मस्तिष्क पर नहीं पड़ेगा। यही नहीं उसका प्रभाव ही उल्टा होगा। अतः व्यक्तित्व के निर्माण में चरित्र और आचरण का प्रमुख योग है। जिस व्यक्ति का चरित्र ठीक नहीं उसका व्यक्तित्व आकर्षक नहीं होता।

जे. कृष्णमूर्ति जी अनुशासन की जगह व्यवस्था शब्द का प्रयोग करते हैं वे कहते हैं कि मैं अनुशासन शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहता, क्योंकि आप अनुशासन का अर्थ सिर्फ बाहरी बदलाव तक सिमट कर रह गया है जबकि व्यवस्था तब तक नहीं हो सकती जब तक भीतरी समूची प्रक्रिया लक्ष्य प्राप्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ न बनाएँ।

अतः मानव अपनी वर्तमान सभ्यता में जीवन को इतने अधिक भागों में बाँट दिया है कि शिक्षा का इससे अधिक और कोई अर्थ नहीं रह गया है उससे केवल हम कोई तकनीक या व्यवसाय सीख ले। हममें से अधिकांश व्यक्ति ज्यों-ज्यों बड़े होते जाते हैं त्यों-त्यों भयभीत एवं परतंत्र होते चले जाते हैं और जहाँ भय है वहाँ न तो मेधा है न मो स्वतंत्रता न प्रेम ही विश्व में व्याप्त संकट का यही मूल कारण है अतः इससे मुक्ति पाने के लिए स्वयं से मुक्ति एवं

परतन्त्रता से मुक्ति आवश्यक है। इसके लिए शिक्षा की जो व्यवस्था है उसमें परिवर्तन करना समीचीन लगता है। आज शिक्षा केवल आजीविका होने के कारण व्यक्ति में संचय की प्रवृत्ति पनप गयी, आज एक व्यक्ति भूखा है तथा दूसरे के पास इतना खाद्यान्न है कि खा नहीं पा रहा है ऐसी स्थिति में खाद्यान्न है कि खा नहीं पा रहा है ऐसी स्थिति में अराजकता, भ्रष्टाचार, लोलुपता एवं संग्रही की प्रवृत्ति का बोलबाला हो चुका है जो सारे मान्यताओं को ध्वस्त कर दिया है उपरोक्त परिस्थिति में जे. कृष्ण मूर्ति के विचारों की शिक्षा में अनुप्रयोग समय की मांग है वर्तमान समय में शिक्षण का स्वरूप बदल गया है कि जिसमें सहानुभूति एवं संवेदना, प्रेम को स्थान नहीं मिल पाने के कारण ठीक ढंग से सीखने के बाजय भय की दृष्टि से सीखने को मजबूर हो रहा है। इस व्यवस्था को समाप्त कर स्वतंत्र वातावरण पैदा करने में इस शोध की उपयोगिता हो सकती है।

शिक्षा को केवल आजीविका मात्र मत समझे, बल्कि जीवन की तैयारी माने। शिक्षा में धर्म की स्थापना को लेकर अनेक शिक्षा विदों ने विरोध किया है उसे कैसे लागू किया जाये? आज शिक्षा में जो होना चाहिए वही गौण हो गया है ऐसी परिस्थिति में जो भ्रष्टाचार व्याप्त है नैसर्गिक, विकास, को महत्व कम हो गया है जे. कृष्णमूर्ति जी नैसर्गिक विकास पर बल दिये है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- पाण्डेय, प्रो० राम शकल (1986), *शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि*, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- पाल, गुप्ता प्रो० मदन मोहन (2005), *शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार*, इलाहाबाद: कैलाश प्रकाशन।
- पचौरी, डॉ० गिरीश (2008), *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक*, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
- मालवीय, डा० राजीव (2006), *शिक्षा दर्शन एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि*, इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन।
- लाल, प्रो० रमन बिहारी (2009). *शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त*, मेरठ : रस्तोगी पब्लिकेशन।
- मालवीय, राजीव (2016). *शिक्षा के दार्शनिक परिप्रेक्ष्य*, प्रयागराज : शारदा पुस्तक भवन।
- ओड, लक्ष्मी लाल के. (2017). *शिक्षा के दार्शनिक पृष्ठभूमि*, राजस्थान : हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।